अनौपचारिका

समकालीन शिक्षा-चिन्तन की मासिक पत्रिका

वर्ष : ४७ * अंक : ३ * फाल्गुन–चैत्र * वि.सं.- २०७७ * **मार्च, २०२१** * पृष्ठ -२८ * सहयोग राशि : अठारह रुपए * RNI 43602/77 ISSN No.2581-981X



मिशन ताना-बाना

घर-घर में गुल्लक

ग्राम–सखी संवाद

भंभोरिया ग्राम सखी–संवाद की श्रृंखला में गांव झांई में एक संवाद कार्यक्रम आयोजित किया गया। बात की शुरुआत सभी सुखी होवे प्रार्थना से हुई। परिचय के बाद समिति के अध्यक्ष श्री रमेश थानवी ने महिलाओं से सुख दुख में एक समान रहने की बात कही। इस संवाद का उद्देश्य समाज में द्वेष की दीवार को हटाकर प्रेम और अपनत्व फैलाना है। उनका कहना था कि हमें अपने परिवारों के साथ साथ बालकों की और गांव की चिंता भी करनी है। यहां बापू की प्रदर्शनी भी लगाई गई और उनके बारे में विस्तार से चर्चा की गयी।



चर्चा में आपने अंधविश्वासों से दूर रहने का संदेश भी दिया। महिलाओं को रसोईघर में काम आने वाली खाद्य सामग्री जैसे हल्दी, राई, धनिया, सौंठ, अजवाइन आदि से इलाज किये जाने की बात पर भी चर्चा की तथा गांव में फैले असमानता के व्यवहार पर भी अपनी चिंता जाहिर की। इस ग्राम–सखी संवाद में श्री मनीष शर्मा और दाधीच पटेल सहित गांव की २५–३० महिलाओं ने भाग लिया। ❑

समिति में महिला दिवस



राजस्थान प्रौढ़ शिक्षण समिति जयपुर में पुस्तकालय में आने वाली युवा बालिकाओं/महिलाओं के साथ महिला दिवस का आयोजन किया गया। आयोजन का विषय था–'**आज के संदर्भ में नव सशक्तिकरण**'। गांधीजी के महिलाओं के प्रति विचार वर्तमान समय में उतने ही संगत और उपयुक्त हैं, जितने उस समय थे। आज उन विचारों को समझने की बड़ी आवश्यकता है क्योंकि उनके आधार पर आज की बहुत–सी समस्याओं के समाधान सहज ही किए जा सकते हैं। किशोरलाल मशरुवाला की पुस्तक गांधी विचार दोहन से एक पीपीटी तैयार कर संभागियों के साथ चर्चा की गयी। इस प्रकार एक सार्थक संवाद किया। अंत में सभी महिलाओं ने परस्पर पुष्पहार पहना कर एक दूसरे को सम्मानित किया। ❑



दांडी मार्च स्मृति दिवस

समिति कार्यालय में १२ मार्च को दांडी–मार्च के स्मृति दिवस पर '**बापू का संदेश**' नामक डाक्यूमेंट्री फिल्म का प्रथम प्रदर्शन किया गया। फिल्म के पट–कथा लेखक अमित कल्ला भी इस समारोह में उपस्थित रहे। राजस्थान ललित कला अकादमी के सचिव डॉ. रजनीश हर्ष तथा पत्रकार तसनीम खान भी आयोजन में उपस्थित रहे। ❑ **सं.**



अलफ़ाज़ बोलते भी हैं

हर इम्तहां के बाद नया इम्तहान है।
हर गुलिसताँ के बाद नया गुलसितान है।
जो दास्तान ख़त्म हुई, उसका ज़िक्र क्या।
हर आसमां के बाद नया आसमान है।

आगाज़ कर दिया है नये इन्क़लाब का।
पैग़ाम मिल गया है नये आफ़ताब का।

समानो मन्त्र: समिति: समानी समानं मन: सहचित्तमेषाम्।
समानं मन्त्रमभिमन्त्रये व: समानेन वो हविषा जुहोमि।।
समानी व आकूति: समाना हृदयानि व:।
समानमस्तु वो मनो यथा व: सुसहासति।। ऋग्वेद

अनौपचारिका

समकालीन शिक्षा-चिन्तन की पत्रिका

वर्ष : ४७ अंक : ३ फाल्गुन-चैत्र वि.सं. २०७७ मार्च, २०२१

क्र म

अपील

समिति के सभी सदस्यों, दूर-दराज के मित्रों एवं भारत के विभिन्न राज्यों में फैले सुधी पाठकों से निवेदन है कि समिति के प्रकाशन की निरंतरता बनाये रखने के लिए अपनी सहयोग राशि पूरी उदारता के साथ भिजवाने का अनुग्रह करें।

आज किसी भी पत्रिका का प्रकाशन बहुत मुश्किल काम है मगर समिति अपने पूर्ण सेवा भाव के साथ अनौपचारिका को पिछले 47 वर्षों से निरंतर निकाल रही है। सभी प्रबुद्ध पाठक जानते हैं कि अभी हाल ही में कादम्बिनी भी बंद हो गई है जो हिन्दुस्तान टाइम्स का प्रकाशन था। ऐसी स्थिति में हम कटिबद्ध हैं कि अनौपचारिका निरंतर निकलती रहे। आपका सहयोग सादर अपेक्षित है।

बैंक विवरण
BANK OF BARODA
Rajasthan Adult Education Association
Branch Name : IDS Ext. Jhalana Jaipur

I.F.S.C. Code : BARB0EXTNEH (Fifth Character is zero)
Micr Code : 302012030
Acct.No. : 98150100002077

संस्थापक संपादक एवं संरक्षक :
रमेश थानवी
कार्यकारी संपादक :
प्रेम गुप्ता
प्रबंध संपादक :
दिलीप शर्मा

राजस्थान प्रौढ़ शिक्षण समिति
७-ए, झालाना डूंगरी संस्थान क्षेत्र,
जयपुर-३०२००४
फोन : 2700559, 2706709, 2707677
ई-मेल : raeajaipur@gmail.com

सद्भावना सहयोग :
व्यक्तिगत ३५०/- रुपये

संस्थागत वार्षिक
शुल्क ५००/- रुपये
मैत्री समुदाय ३०००/- रुपये

स्त्री सशक्तिकरण के पक्षधर : स्वामी विवेकानन्द

स्वामी विवेकानंद का जन्म १२ जनवरी वर्ष १८६३ को कलकत्ता में हुआ। स्वामी विवेकानंद का दर्शन वेदांत-दर्शन था। वे वेदों के भाष्यकार थे। धर्म और वेदों के प्रचार प्रसार के लिए उन्होंने देश-विदेश की यात्राएं की। अमेरिका में विश्व धर्म सम्मेलन में वेदांत पर अभूतपूर्व व्याख्यान दिया । यहां अपने भाषण की शुरुआत **सिस्टर्स एंड ब्रदर्स** संबोधन करके की जिससे अमेरिका सहित अनेकों देशों के प्रतिनिधि आश्चर्य में पड़ गए थे।

स्वामी विवेकानंद मानव सेवा को सर्वश्रेष्ठ धर्म मानते रहे। उन्होंने कहा यदि तुम अपने भाई का सम्मान नहीं करते जो ईश्वर की अभिव्यक्ति है तो उस ईश्वर की पूजा कैसे कर सकते हो!

स्वामी विवेकानंद लोक कल्याण के उद्देश्य से बहुत कम उम्र में ही अपने साथियों का साथ छोड़ कर अकेले ही संपूर्ण देश की जानकारी पाने हेतु भारत भ्रमण पर निकल गए। वर्ष १८९१ में वे दिल्ली पहुंचे थे। उसके बाद अलवर, जयपुर, खेतड़ी, पुष्कर होते हुए माउंट आबू गए थे।

स्वामी जी हिंदू-मुस्लिम में कोई भेद नहीं समझते थे। इसका परिचय एक छोटी सी घटना से मिलता है-माउंट आबू में स्वामी जी का परिचय किशनगढ़ राज्य के वकील मुंशी फैजअली से हुआ। उनके आत्मिक आग्रह पर उन्होंने दोपहर का भोजन उनके साथ किया। इस पर खेतड़ी नरेश के प्राइवेट सेक्रेट्री मुंशी जगमोहन उनसे प्रश्न कर बैठे- स्वामी जी आप हिंदू सन्यासी होते हुए एक मुसलमान के घर पर हैं; आपके भोजन को यह मुसलमान कैसे छू सकते हैं? इस पर स्वामी जी ने तपाक से उत्तर दिया कि महाशय आपके ऐसा कहने का मतलब क्या है?



स्वामी जी जन-जन की शिक्षा के पक्षधर थे। भारत में निरक्षरों की बढ़ती हुई संख्या को देखकर स्वामी जी बड़े दुखी हुए थे और वे भारत को साक्षर और शिक्षित बनाने का सपना देखने लगे। उनका विश्वास था कि निर्धनता ही सभी बुराइयों की जड़ है और दरिद्रता ही जन शिक्षा के मार्ग में सबसे बड़ी बाधा है। यदि प्रत्येक गांव में पाठशाला भी खोल दी जाए तो गरीब बालक वहां नहीं जाएगा। क्योंकि उसे तो पेट

पालने के लिए खेत पर पिता का हाथ बंटाना होता है और बालिका को घर के काम में और छोटे भाई बहनों के पालन पोषण में मां की सहायता करनी पड़ती है।

स्वामी जी ने अमीरों की कड़ी निंदा करते हुए यहां तक कह दिया था कि मैं उन शिक्षित व्यक्तियों को, **जो उनके मूल्य पर पढ़े हैं, किंतु उन्हें शिक्षित करने का प्रयास नहीं करते, देशद्रोही मानता हूं।**

स्वामी विवेकानंद का शिक्षा दर्शन बड़ा ही व्यापक और व्यवहारिक था। वे ज्ञान को बाहर से प्राप्त करने में विश्वास नहीं करते थे उनका मानना था कि ज्ञान तो व्यक्ति के भीतर ही है। बालकों के संबंध में उनका कहना था कि बालक अपना विकास स्वयं करता है। शिक्षा का कार्य उसके विकास में आने वाली बाधाओं को दूर करना है। हमें बच्चों को स्वतंत्र रखकर उन्हें स्वयं अपने मार्ग खोजने का अवसर देना चाहिए। शिक्षा बच्चों की आवश्यकता और स्वभाव के अनुकूल होनी चाहिए ।

स्वामी विवेकानंद एक महान विचारक थे। राष्ट्रीय भावना के विकास के साथ ही अंतर्राष्ट्रीय तथा विश्व बंधुत्व की भावना के विकास को भी उन्होंने व्यक्ति के लिए आवश्यक बताया। उनके शब्दों में सच्ची शिक्षा वह है जिससे चरित्र का निर्माण होता है, शरीर और मन बलशाली बनता है। बुद्धि बढ़ती है और व्यक्ति आत्मनिर्भर बनता है।

विवेकानंद भारत के सच्चे सजग प्रहरी तथा आध्यात्मिक राजदूत रहे। भारत के धर्म तथा संस्कृति की जो व्याख्या उन्होंने विदेशों में प्रस्तुत की वह अपने ढंग की अनूठी है। तभी तो गुरुदेव रविंद्र नाथ टैगोर ने रोमां रोला से कहा था कि अगर तुम भारत के विषय में जानना चाहते हो तो विवेकानंद का अध्ययन करो।

स्वामी विवेकानंद ने महिलाओं के सशक्त होने को अनिवार्य बताया था। भारत जैसे देश में जहां समाज में महिलाओं के खिलाफ कितने ही प्रकार के अत्याचार होते हैं। अनाचार किया जाता है और ना जाने कैसी-कैसी घटनाओं और घरेलू परिस्थितियों का महिलाओं को प्रतिदिन शिकार होना पड़ता है। ऐसे में केवल एक मात्र समाधान स्त्रियों का सशक्तिकरण है।

विवेकानंद का मानना था कि स्त्री की उन्नति के बिना भारत कभी भी विकास नहीं कर सकता। उनकी नजर में सभी शक्तिशाली राष्ट्र स्त्रियों को सम्मान देकर ही आगे बढ़े हैं और जहां नारी जाति का सम्मान ना होता हो उस देश से सच्चे विकास की उम्मीद भी नहीं की जा सकती। स्वामी विवेकानंद बालिका-शिक्षा के पक्षधर थे। उन्होंने बाल-विवाह का विरोध किया और लड़कियों को हर प्रकार की शिक्षा देने पर जोर दिया था। लेकिन देखने की बात यह है कि कई दशक बीत जाने के बाद भी आज हम स्त्रियों के सशक्तिकरण पर बात कर रहे हैं। ❑ **–प्रेम गुप्ता**





शंपा शाह

❑

गणतंत्र दिवस पर इस साल लोक–कलाकार श्रीमती भूरीबाई को पद्मश्री से सम्मानित किया गया है। प्रस्तुत है, श्रीमती भूरी बाई के बारे में शंपा शाह का यह लेख। शंपा शाह मूलतः मूर्तिकार हैं, जो पिछले बीस सालों से मिट्टी के माध्यम से काम कर रही हैं। वे इंदिरा गांधी राष्ट्रीय मानव संग्रहालय, भोपाल के सिरेमिक अनुभाग से संबद्ध रही हैं। लोक व आदिवासी कला, साहित्यिक पहलुओं पर लिखती रहती हैं। ❑ सं.

अंतरराष्ट्रीय महिला दिवस पर आदिवासी कलाकार को बधाई

भूरीबाई और 'चित्तरकाज'

पद्मश्री से विभूषित श्रीमती भूरीबाई के नाम के आगे 'लिखमा जोखारी' (भील समुदाय इन्हें हर मनुष्य का कर्म लिख देने वाली देवी मानता है।) ने जन्म के समय ही लिख दिया–'चित्तरकाज'।

लेकिन, भूरीबाई और बाकी सारी दुनिया को इस बात का पता चलने में देर लगी। पहले तो भूरीबाई यही सोचती थीं कि उनके भाग्य में मेहनत, मजदूरी, सर पर बोझ ढोना ही लिखा है।

गांव पिटोल, जिला–झाबुआ के एक हागड़ा (सागौन) के पत्तों से छवाये छप्पर वाले मिट्टी के घर में भूरीबाई ने जन्म लिया। किसी को नहीं पता कि ये कौन–सा साल, कौन–सा महीना था ? भूरीबाई को जन्म की तारीख, महीना, साल आदि भले न पता चल पाया हो, लेकिन वो इस दुनिया में क्यों आयीं, इस धरती पर उनके होने का मकसद क्या है– इसे 'लिखमा जोखारी' ने बड़े साफ हर्फों में लिख दिया था।

माता–पिता की खेती बहुत कम थी, उससे घर का गुजारा नहीं चलता था। जल्दी ही भूरी और उनकी बड़ी बहन झांपड़ी, एक लबाना (जमींदार) के खेत पर निंदाई करने जाने लगीं। दिन भर निंदाई करने पर शाम को एक रुपया मिलता था। लेकिन लबाना के खेतों में हमेशा काम नहीं मिलता था। ज्यादातर समय दोनों बहनें पीपल के पत्तों का या सूखी, जंगल से इकट्ठा की गयी टहनियों का गट्ठर लेकर दाहोद जातीं और वहां उन्हें दो रुपये किलो के मोल से एक आदमी को बेचतीं।



गांव से कोई चार किलोमीटर दूरी पर अणास रेलवे स्टेशन से दोनों बहनें सुबह ग्यारह बजे साबरमती एक्सप्रेस पकड़कर दाहोद पहुंचतीं और शाम को फिर दाहोद से यही ट्रेन पकड़कर लौटतीं। ट्रेन का कोई ठिकाना तो था नहीं, कई बार दो–तीन घंटे लेट होती और तब दोनों बहनों को घर पहुंचने में रात के नौ–दस बज जाते। दोनों बहनें कड़ी मेहनत करतीं, तब जाकर घर का दाना–पानी चलता था। बाकी सारे



भूरी अपनी बहन और गांव के दूसरे लोगों के साथ मजदूरी करने लगीं –कभी 'मानव संग्रहालय' में, कभी 'वन विहार' में, कभी 'भारत भवन' में। इन सभी संस्थानों का वह निर्माण काल था और भूरीबाई इन महत्वपूर्ण राष्ट्रीय संस्थानों की 'ग्रासरूट' निर्माता!'



भाई-बहन छोटे थे और पिता के कमाने से घर-भर को रोटी नहीं जुट पाती थी।

पिता के चचेरे भाई इस बीच भोपाल में जाकर मजदूरी करने लगे थे। उन्होंने इन लोगों को बताया कि शहर में दिन भर की मजदूरी के छह रुपये मिलते हैं। दोनों बहनें चाचा के साथ भोपाल आ गईं। दूसरे सारे लोग भोपाल के बड़े तालाब के किनारे झोपड़ियां बनाकर रहते थे। चाचा मुख्यमंत्री निवास के आउटहाउस में रहते थे। भूरीबाई भी वहीं रहने लगीं। भूरी अपनी बहन और गांव के दूसरे लोगों के साथ मजदूरी करने लगीं - कभी 'मानव संग्रहालय' में, कभी 'वन विहार' में, कभी 'भारत भवन' में। इन सभी संस्थानों का वह निर्माण काल था और भूरीबाई इन महत्वपूर्ण राष्ट्रीय संस्थानों की 'ग्रासरूट' निर्माता!'

इस समय भूरीबाई की उम्र कोई चौदह बरस की रही होगी। काम करते आते-जाते उनकी पहचान जोहरसिंह से हुई। यूं जोहरसिंह शादीशुदा भी थे और भूरीबाई से उम्र में भी बड़े थे। पर जोहरसिंह का मन भूरीबाई पर इस कदर आया कि वे जब-तब चाचा के आस-पास ही बने रहते। उन्होंने अपने मन की बात भूरीबाई, उनके चाचा आदि से भी कह दी। भूरीबाई तय नहीं कर पा रही थीं कि क्या सही है क्या गलत- शादीशुदा आदमी, ऊपर से दाहोद यानी गुजरात, यानी सूखे इलाके का रहने वाला। किन्तु जोहरसिंह बांके सजीले थे और भूरीबाई को बहुत चाहते भी थे।

तभी भगोरिया मेले का समय (होली) आ गया। वही भगोरिया मेला जहां भील युवक- युवतियां एक-दूसरे को पसंद कर शादी का मन बनाते हैं। भूरीबाई और गांव के सारे लोग भगोरिया के लिए गांव गए। जोहरसिंह अपने दोस्तों के साथ मेले में पहुंचे और वहां चूड़ी खरीद रही भूरीबाई को साथ चलने के लिए अपनी गाड़ी में बैठने को कहने लगे। भूरी के भाई और बहनोई आदि ने जोहरसिंह को पीटना शुरू कर दिया। भूरीबाई से न रहा गया और वे बोल पड़ीं कि वे अपनी मर्जी से जोहरसिंह के साथ जाने लगी थीं। इस तरह भगोरिया के मेले में भूरीबाई का ब्याह जोहरसिंह से हो गया। जोहरसिंह और उनकी पहली पत्नी भोपाल में पीडब्ल्यूडी में काम करते थे। थोड़ा-बहुत झगड़ा तो होना ही था, लेकिन फिर सब साथ में तालाब के किनारे एक झोपड़ी में रहने लगे।

उन दिनों भूरीबाई अपनी बहन के साथ 'भारत भवन' में मजदूरी कर रही थीं। एक दिन बाबा उर्फ 'रूपंकर, भारत भवन' के निदेशक, श्री जगदीश स्वामीनाथन आये और पूछने लगे कि तुम लोग कौन समाज से हो, तुम्हारे यहां शादी

कैसे होती है, बच्चे के जन्म पर क्या होता है, मुझे चित्र बनाकर दिखाओगी ? भूरीबाई और अन्य औरतों को हिन्दी नहीं आती थी, चाचा के लड़के ने सारी बात बताई। भूरीबाई की बहन ने भूरी से कहा कि वो घर की दीवार पर जैसे चित्र बनाती थी वैसे ही कुछ बना दे। भूरीबाई बोलीं–मुझे मजदूरी कौन देगा ? बाबा बोले जो चित्र बनाएगा उन्हें छह की जगह दस रुपये मजदूरी मिलेगी। लेकिन खुश होने के बजाय भूरीबाई और डर गयीं कि पता नहीं क्या बात है– छह की जगह कोई दस रुपये भला क्यों देगा ?

स्वामी नाथन ने कहा–घर पे तो दीवार पर चित्र बनाती थीं पर यहां मैं कागज, रंग और ब्रश दूंगा। उससे बिल्डिंग में चलकर टेबल–कुर्सी में बैठकर चित्र बनाओ। भूरीबाई और भी डर गयीं। उन्होंने बिल्डिंग के अंदर जाने से साफ मना कर दिया। बाबा ने पूछा–तब कहां बैठकर चित्र बनाओगी ? भूरी बोलीं–मंदिर के चबूतरे पर। चुनांचे दस दिनों तक भूरीबाई ने 'भारत भवन' के पास बने मंदिर के चबूतरे पर बैठकर चित्र बनाये और हर दिन नकद दस रुपये पाए। लेकिन बावजूद इसके भूरीबाई के अलावा कोई भी और चित्र बनाने के लिए प्रेरित नहीं हुआ। स्वामी जी को उनके चित्र बहुत पसंद आये। वे बोले, मुझे अपना घर दिखा दो। बाद में फिर कभी चित्र बनाने के लिए बुलाऊंगा।

स्वामीनाथन जी ने कुछ समय बाद भूरी को फिर से चित्र बनाने के लिए बुलाया। इस बार लाडोबाई, संतुबाई और सादूबाई नामक भील लड़कियों ने भी उनके साथ चित्र बनाये। दस चित्र बनाने के हर एक को पन्द्रह सौ रुपये मिले। भूरीबाई को विश्वास न होता कि आराम से बैठकर चित्र बनाने के लिए कोई उन्हें इतने रुपये देगा। समाज के लोग तरह–तरह की बातें करते और भूरीबाई के पति को भड़काने की कोशिश करते, लेकिन जोहरसिंह ने भूरीबाई को चित्र बनाने के लिए कभी कोई रोकटोक नहीं की।

इस बीच भूरीबाई अपने परिवार के साथ बाणगंगा इलाके में रहने लगीं। एक रोज पड़ोसी गुल्लुमियां ने जोहरसिंह को बताया कि तुम्हारी पत्नी का फोटो अखबार में आया है। उन्हें शिखर–सम्मान मिला है। भूरीबाई को बड़ा आश्चर्य हुआ और वे जोहरसिंह से बोलीं–'ये कैसा सामान है। अपने घर में तो सब सामान है। फिर सरकार ये क्या सामान दे रही है ?'

तब गुल्लुमियां ने बताया–'यह सामान नहीं, आपका मान–सम्मान करने की बात हो रही है।'

शिखर–सम्मान मिलने के बाद भूरीबाई को सभी पहचानने लगे और समाज में भी उनकी इज्जत बढ़



स्वामी नाथन ने कहा–घर पे तो दीवार पर चित्र बनाती थीं पर यहां मैं कागज, रंग और ब्रश दूंगा। उससे बिल्डिंग में चलकर टेबल–कुर्सी में बैठकर चित्र बनाओ। भूरीबाई और भी डर गयीं। उन्होंने बिल्डिंग के अंदर जाने से साफ मना कर दिया। बाबा ने पूछा–तब कहां बैठकर चित्र बनाओगी ? भूरी बोलीं–मंदिर के चबूतरे पर। चुनांचे दस दिनों तक भूरीबाई ने 'भारत भवन' के पास बने मंदिर के चबूतरे पर बैठकर चित्र बनाये और हर दिन नकद दस रुपये पाए। लेकिन बावजूद इसके भूरीबाई के अलावा कोई भी और चित्र बनाने के लिए प्रेरित नहीं हुआ। स्वामी नाथन को उनके चित्र बहुत पसंद आये।



कोई पचास साल पहले 'लिखमा जोखारी' ने भूरीबाई के नाम के आगे 'चित्तरकाज' लिखा था जिसे भूरीबाई दिनों–दिन बढ़ती लगन से करती जा रही हैं। वे कहती हैं कि काम करते हुए वे आज भी स्वर्गीय श्री जगदीश स्वामीनाथन जी के आशीर्वाद को अनुभव करती हैं और उन्हीं से अपने 'चित्तरकाज' की प्रेरणा पाती हैं।



गयी। देश में कई जगहों से चित्र बनाने के लिए बुलावे आने लगे। भूरीबाई के अब तक छह बच्चे हो चुके थे। फिर वे बीमार पड़ी और कोई चार साल तक खाट में पड़ीं रहीं। उन्हें चमड़ी का रोग हो गया था जो किसी दवाई से ठीक होने में नहीं आ रहा था। धीरे–धीरे किसी को उनके बचने की उम्मीद सी न रही। अंतत: थक–हार कर भूरीबाई ने सारी अंग्रेजी दवाइयां छोड़ कर केवल नारियल का तेल लगाना शुरू किया। तब अचानक भूरीबाई ठीक होने लगीं और अंतत: पूरी तरह स्वस्थ हो गयीं।

बीमारी के दौरान वे 'आदिवासी लोककला परिषद' के निदेशक श्री कपिल तिवारी से मिलीं (भूरीबाई के ही साथ इस वर्ष कपिल तिवारी को भी पद्मश्री से सम्मानित किया गया है।) और अपनी तकलीफ बताई। तिवारी जी ने उनके इलाज के बंदोबस्त के अलावा परिषद् में उन्हें बतौर कलाकार नौकरी भी दी। इससे भूरीबाई को बड़ा सहारा मिला।

श्रीमती भूरीबाई को २००९ में 'राष्ट्रीय अहिल्याबाई होल्कर सम्मान' और २०१० में 'राष्ट्रीय दुर्गावती सम्मान' से नवाजा गया। भूरीबाई कहती हैं कि लड़कपन से ही आसमान में हवाईजहाज को उड़ता देख उन्हें उसमें बैठने का मन करता था। अंतत: उनकी ये इच्छा भी पूरी हो गयी।

धीरे–धीरे भूरीबाई के काम का सम्मान और उसकी बढ़ती मांग को देख उनके पति ने भी काम में हाथ बंटाने में रुचि दिखाई। भूरीबाई को बेहद खुशी हुई, उन्होंने जोहरसिंह को चित्र बनाना सिखाया और तब वे साथ–साथ चित्र बनाने का काम करने लगे। किन्तु अचानक एक रोज जोहरसिंह की तबीयत कुछ खराब हुई। उन्हें अस्पताल में भर्ती कराया, पर तबीयत न संभली और कभी बीमार न पड़ने वाले जोहरसिंह इस लोक से चल बसे।

भूरीबाई अब अपने बच्चों के साथ रहती हैं। इनमें दो बच्चे पहली पत्नी के हैं। भूरीबाई के साथ में अब उनकी बड़ी बेटी शांताबाई, सबसे छोटा बेटा अनिल बारिया और उसकी पत्नी सविता चित्रकारी के काम में मदद करते हैं। भूरीबाई बताती हैं कि यूं तो सभी अच्छे चित्र बना लेते हैं, पर ये तीन ज्यादा अच्छा काम करते हैं।

कोई पचास साल पहले 'लिखमा जोखारी' ने भूरीबाई के नाम के आगे 'चित्तरकाज' लिखा था जिसे भूरीबाई दिनों–दिन बढ़ती लगन से करती जा रही हैं। वे कहती हैं कि काम करते हुए वे आज भी स्वर्गीय श्री जगदीश स्वामीनाथन जी के आशीर्वाद को अनुभव करती हैं और उन्हीं से अपने 'चित्तरकाज' की प्रेरणा पाती हैं। ❑

(सप्रेस से साभार)

नाना का पत्र नाती के नाम



भगवती प्रसाद गौतम

❑

आज तकनीकी विज्ञान हमारे जीवन पर इतना हावी हो गया है कि पुस्तकें पीछे छूट गयी हैं। मोबाईल ने तो पत्र लिखने की परम्परा को दूर कर दिया है। पत्र ही हमें अपनी बात सम्पूर्णता से कहने का अवसर देता है। पत्र आत्मीयता जताने का और प्यार को प्रकट करने का प्रखर माध्यम है। पत्र प्यार ही प्यार में बालकों को बहुत कुछ सिखाने का और सारी दुनिया दिखाने का माध्यम भी है। आज समाज इस आत्मीय माध्यम से हाथ धो बैठा है और यह हमारे समाज की बहुत बड़ी सांस्कृतिक दुर्घटना है। ❑ सं.

लाडले-दुलारे राघव, कैसे हो राजा? दादा-दादी के राज में स्वस्थ-मस्त ही होगे। याद तो नाना-नानी की भी आती ही है न? हाँ, एक बात, नानी को तो तुमने नानी ही कहा और नाना को 'पापा जी' बना दिया? वाह! ऐसा क्यों? शायद तुम्हारी मम्मी डॉली और मौसेरे भैया नमन व नन्नू की तर्ज पर ही ऐसा हुआ। सच, बहुत अच्छा लगता है तुम्हारे मुंह से भी यह संबोधन। पिछले दिनों तुम्हारी स्कूली परीक्षाएं चल रही थीं। इसीलिए मैंने कोई खत नहीं लिखा और लिखता भी कैसे? बात तो मोबाइल पर या ऑनलाइन हो ही जाती है आजकल। इस मोबाइल ने हमारी पत्र-संस्कृति को, खत लिखने की परंपरा को मटियामेट ही कर दिया है।

खैर, अब तुम फिर एक और पायदान चढ़ चुके हो, पाँचवीं कक्षा में जा पहुंचे हो। इसकी जितनी खुशी तुम्हारे मम्मी-पापा, दादा-दादी और पूरे परिवार को हुई होगी, उतनी ही हमें भी हुई है। अब जो समय है वह वेकेशंस (छुट्टियों) के उत्सव का समय है। खेलने-कूदने, घूमने-फिरने या इंद्रधनुषी रंगों तथा नए-नए रूपों-आकारों में खो जाने का समय है... ऐसे सुंदर चित्र-आकारों में, जो तुम्हारे सपनों से मेल खाते हैं। वैसे तुम्हारे पास बहुत-कुछ नया करने का स्किल (कौशल) है। याद करो, दो साल पहले ऐसी ही छुट्टियों में तुमने ड्राइंग रूम की खिड़की से सटी दीवार पर गुपचुप कुछ रेखाचित्र बना दिए थे। पूछने पर तुम्हीं ने बताया था कि वे दादा-दादी, मम्मी-पापा और लाडो के चित्र हैं। वे आज भी मेरी मोबाइल गैलेरी में जस-के-तस मौजूद हैं।

बीते ३१ दिसंबर को तुमने नौवीं वर्षगाँठ मनाई थी और उस शानदार मौके पर नानी ने तुम्हें जो साइकिल गिफ्ट की थी, वह अब भी यहाँ पानी की मोटर के पास खड़ी तुम्हारी बाट जोह रही है। इस बार की छुट्टियों में जब तुम आओ तो उसे खूब चलाना- दौड़ाना लेकिन हमारी उपस्थिति में और बड़ी सावधानी से काफी देख-भालकर ताकि न तो साइकिल में टूट-फूट हो और न ही तुम्हें या किसी और को कोई चोट लगे।

क्या तुम्हें पता है कि अब मैं पचहत्तर पार कर चुका हूँ? पर इस मुकाम पर आकर विश्वास के साथ कह सकता हूँ कि बालपन जीवन का गोल्डन पीरियड होता है, एक सुनहरा समय...जितना निश्छल, जितना मासूम, उतना ही निश्चिंत, उतना ही

बेफिक्र भी। मैं जब छोटा था, तुमसे भी छोटा और गाँव में रहता था तो मेरे पास खेलने के लिए गोगाड़ी (चकमक पत्थर) की गाय और पीपल के पत्तों व तिनकों से बनी भैंसें हुआ करती थीं। या फिर होती थीं मिट्टी की छोटी–बड़ी गोलियां, कपड़ों की सिली–गुंथी हुई दड़ियाँ (गेंदें), पंगेरी (सरकंडे) की गाड़ी–गुडली...सस्ते और खुद के हाथों के हुनर से भरपूर खिलौने। उन्हीं में बहुत मजा आता था।

तुम तो जन्म से ही शहर में रहे हो और आज तुम्हारे पास प्लास्टिक व मशीनी खिलौनों की भरमार है। किंतु पता है, इनकी वजह से कई बच्चों की तरह तुम प्राकृतिक हवा, पानी, धूप और धूल से दूर हो रहे हो। अब तुम इंटरनेट व मोबाइल गेम्स के साथ–साथ जंकफूड को भी गले लगा बैठे हो। ये सब तुम्हारे तन व मन, सेहत व स्वभाव दोनों के लिए बहुत घातक हैं। ये भोले–भाले बच्चों को चिड़चिड़ा और हमलावर बना देते हैं। मुसीबत यह है कि इनमें उलझने के बाद कभी–कभी जान के भी लाले पड़ जाते हैं।

इसी से जुड़ी एक और बात। तुम्हारी जिद पर मम्मी–पापा ने पिछले दशहरा मेले में तुम्हें एक गन दिलाई थी, बहुत महंगी, शायद तेरह–चौदह सौ रुपये की। परिणाम? वह कुछ ही दिनों में खराब हो गई और कबाड़ में चली गई। पैसा भी बरबाद और कोहराम मचा सो अलग। यहाँ तुम्हें बता दूँ कि बच्चों के एक बड़े कवि थे शेरजंग गर्ग। बड़ी मजेदार कविताएं लिखते थे। एक बार वे दिल्ली से आए और इसी शहर के एक नामी स्कूली कार्यक्रम में बच्चों के बीच पहुंचे। मैं भी उनके साथ था। सच, बच्चों से बातचीत करते हुए उन्होंने ऐसी ही 'गन' (बंदूक) की एक बहुत ही सुंदर कविता सुनाई जिसकी आखिरी पंक्तियाँ आज भी मैं नहीं भूला हूँ–

तुमको अपने गले लगा लूँ यदि तुम
यह बंदूक फेंक दो।
एक नया त्योहार मना लूँ यदि तुम
यह बंदूक फेंक दो।

प्रिय राघव, तुम इंटेलिजेंट हो। तुम्हारी मेमोरी (याददाश्त) भी बहुत अच्छी है। नर्सरी से ही हिंदी–अंग्रेजी पढ़ रहे हो। तुम्हें जरूर याद होगा कि तुम जब दूसरी कक्षा में पढ़ते थे, तुमने मुझसे एक नई राइम (शिशुगीत) सीखी थी– 'ए प्रिटी लिटिल यलो बर्ड...'। जो राइम मैंने छठी कक्षा में पढ़ी थी, वही तुमने छोटी–सी उम्र में बड़े विश्वास के साथ जब अपनी क्लास में सुनाई तो मेम ने तुम्हारी कितनी तारीफ की थी और पूरी क्लास ने कैसे खुलकर तालियाँ बजाई थीं! तुम्हीं ने तो बताया था यह सब, उस दिन तुम बहुत खुश थे!

यह समय तकनीकी ज्ञान और विज्ञान का समय है, पर यही हमारे जीवन पर इतना हावी हो गया है कि मनमोहक और ज्ञानपरक पुस्तकें पीछे छूट गई हैं। इससे बच्चों

महर्षि का पुण्य–स्मरण

❑

महर्षि दयानन्द सरस्वती राजस्थान में आकर रहे। अपनी शिक्षा और तपस्या से प्रदेश को आलोकित कर गये और अंतत: किसी दुर्घटना के अन्तर्गत शरीर भी यहीं छोड़ा। यहां हम उनके उपदेशों का स्मरण कर रहे हैं। ❑ सं.



१) सब सत्य विद्या और पदार्थ विद्या से जाने जाते हैं उन सबका आदिमूल परमेश्वर है ।

२) ईश्वर सच्चिदानंदस्वरूप, निराकार, सर्वशक्तिमान, न्यायकारी, दयालु, अजन्मा, अनन्त, निर्विकार, अनादि, अनुपम, सर्वाधार,सर्वेश्वर, सर्वव्यापक, सर्वान्तर्यामी, अजर, अमर, अभय, नित्य

पवित्र और सृष्टिकर्ता है, उसी की उपासना करनी चाहिए।

३) वेद सब सत्य विद्याओं का पुस्तक है।वेद का पढ़ना पढ़ाना और सुनना सुनाना सब आर्योका परम धर्म है ।

४) सत्य को ग्रहण करने और असत्य को छोड़ने में सर्वदा उद्धत रहना चाहिए।

५) सब काम धर्मानुसार,अर्थात सत्य और असत्य को विचार करके करना चाहिए।

६) संसार का उपकार करना इस समाज का मुख्य उद्देश्य है, अर्थात शारीरिक, आत्मिक ओर सामाजिक उन्नति करना।

७) सबसे प्रीतिपूर्वक, धर्मानुसार, यथायोग्य वर्तना चाहिए।

८) अविद्या का नाश और विद्या की वृद्धि करनी चाहिए।

९) प्रत्येक को अपनी ही उन्नति से प्रसन्न नहीं रहना चाहिए, किन्तु सब की उन्नति में अपनी उन्नति समझनी चाहिए।

१०) सब मनुष्यों को सामाजिक सर्वहितकारी नियम पालने में परतंत्र रहना चाहिए और प्रत्येक हितकारी नियम में सब स्वतंत्र रहें।

ये दस नियम हैं आर्य समाज के। ❑

को ही नहीं, सारे समाज को और देश को बड़ी हानि पहुँच रही है। शायद स्कूल में कभी तुमने एक पुस्तक का नाम सुना हो- 'पिता के पत्र पुत्री के नाम' (लेटर्स फ्रॉम ए फादर टु हिज़ डॉटर')। जानते हो ये पत्र लिखने वाले पिता कौन थे? वे थे भारत के पहले प्रधानमंत्री पं. जवाहर लाल नेहरू जो चाचा नेहरू के नाम से जाने जाते हैं और पुत्री थी लगभग तुम्हारी ही उम्र की इंदिरा प्रियदर्शिनी। आजादी की लड़ाई के दौर में चाचा नेहरू ने ये पत्र वर्ष १९२८-२९ में उस समय लिखे थे जब वे जेल में थे। उन्हीं पत्रों ने इंदिरा को राष्ट्र व संस्कृति से प्रेम करना सिखाया। उन्हीं की वजह से तुम्हारे जैसी एक बच्ची आगे चलकर इंदिरा प्रियदर्शिनी से विश्व विख्यात 'इंदिरा गांधी' बन गई।

याद रखो राघव, पत्र या ख़त अपने सोच व समय का आईना होते हैं। वे हमारे आपसी संवादों और संबंधों को बड़ी ताकत देते हैं। तुम भी इस बात को अभी से भली-भांति समझ सकते हो। बस जरूरत है पेन-पेपर उठाने की। अब हम तुम्हारा और तुम्हारे पत्र का इंतजार कर रहे हैं। दादा-दादी और परिवार के सभी छोटों-बड़ों तक हमारा स्नेह व सद्भाव जरूर पहुंचे।

खुश रहो...

तुम्हारे पापा जी ❑

१-त-८, 'अंजलि' दादाबाड़ी,
कोटा-३२४००९

अनौपचारिका के प्रकाशन का विवरण

फार्म-४

१.	पत्र का नाम	अनौपचारिका
२.	भाषा	हिन्दी
३.	अवधि	मासिक
४.	वार्षिक शुल्क	तीन सौ पचास रुपये
५.	प्रकाशक का नाम	रमेश थानवी
६.	राष्ट्रीयता	भारतीय
	पता	राजस्थान प्रौढ़ शिक्षण समिति, ७-ए, झालाना संस्थान क्षेत्र, जयपुर-३०२००४
७.	प्रकाशन का स्थान	जयपुर
८.	मुद्रक का नाम	रमेश थानवी
	राष्ट्रीयता	भारतीय
	पता	उपर्युक्त
९.	मुद्रणालय का नाम	कुमार एंड कम्पनी
१०.	संपादक का नाम	रमेश थानवी
११.	क्या यह नया प्रकाशन है	नहीं

हस्ताक्षर
रमेश थानवी
(संपादक, प्रकाशक, मुद्रक)



नया डर

❑

मंगलेश डबराल

''कन्नड़ वचन साहित्य के विद्वान एमएम कलबुर्गी, तर्कविद नरेन्द्र दाभोलकर और लेखक-एक्टिविस्ट गोविन्द पानसरे की स्मृति में, जिनकी विचार धारा से सहमति न होने के कारण हत्या कर दी गयी।'' मंगलेश जी ने यह कविता लिखी तब तक गौरी लंकेश की हत्या नहीं हुई थी। आज वह बात भी पुरानी हो गयी है। डर मगर बना हुआ है। सत्यं वद, धर्मम् चर का मंत्र भी पुराना है । सरकार तो सत्यमेव जयते के सहारे ही सदा खड़ी रहती है। वही तीन चेहरों वाला शेर। इस कविता का सत्यवादी सर्जक भी आज चला गया है। विषाद बना हुआ- **'न हन्यते हन्यमाने शरीरे।'** मंगलेश जी की स्मृति में कविता प्रस्तुत है। ❑ सं.

पुराने समय में डर एक जानी पहचानी चीज़ था
वह अकसर किसी महल से राजसी पोशाक में निकलता था
उसके टहलने पर चारों तरफ़ सन्नाटा छा जाता
चिड़ियां भी सहम कर चुप हो जातीं
कभी वह चौराहों-बस्तियों में डुगडुगी बजाता प्रकट होता
कहता हुआ - 'सावधान हो जायें सब
राजा, उसके कारिन्दों और ब्राह्मण के खिलाफ बोलना अपराध है
काल कोठरियां और मृत्युदंड के लिए रस्सियां तैयार हैं।'
डराने के तरीके गिने-चुने थे, सज़ाएं भी कमोबेश नियत थीं
अवज्ञा विद्रोह विश्वासघात
राजन कहकर सम्बोधित न करने पर बड़ी-छोटी सज़ा
धर्मग्रंथों को पढ़ने-सुनने पर कानों में पिघला हुआ सीसा
और ढीठ प्रेमियों को चिनवाने के लिए दीवारें
ऐसा भी हुआ कि कोई कवि राजा की बेटी को पढ़ाने गया
और उसके प्रेम में पड़ गया
लेकिन जब उसे सज़ा देने के लिए ले जाया गया
तो वह सुनाने लगा विरह की एक सुन्दर कविता
राजा सज़ा-वज़ा सब भूल गया





उसने कवि को बेटी ब्याह दी स्वर्ण-मुहरों के साथ
इस तरह फिरे कवि के दिन[1]
एक बार पकड़ा गया था एक शातिर चोर
उसने भी राजा को एक श्लोक सुनाकर मुग्ध कर दिया
ये घटनाएं अपवाद की तरह थीं लेकिन
कई काव्य इन गुप्त प्रेमियों और चोरों की प्रतिभा से संभव हुए
नया डर किसी महल से नहीं
कहीं से भी प्रकट हो सकता है
वह अनिश्चित अपरिभाषित है पहले के डरों से अलग
उसके तरीके भी बढ़े और बदले हुए हैं
उसका समय और जगह तय नहीं है
वह रास्ते में किसी मोड़ पर किसी सभा में मिल सकता है
सुबह सैर पर निकलते हुए हत्यारे की गोली के रूप में
खाना खाते हुए हाथ के कौर और मुंह के बीच घुस सकता है
अकाल के बीच कुसुम की तरह खिला हुआ[2]
वह ताक़तवर मुस्कराहटों ख़ामोशियों
और प्रेम जैसी चीज़ों में भी छिपा हुआ रहता है
डराने का काम भी बांट दिया गया है समाज में
भय का एक लोकतंत्र है
और डर उपजाना एक नया रोज़गार
कुछ बोलने-लिखने कुछ खाने-पीने-पहनने से पहले
लगता है कुछ है जो हमें घूर रहा है
सज़ाएं भी उतनी ही अनिश्चित हैं
जो डराता है उसकी कामयाबी इस डर को बुनियादी बनाने में है
कि कब कहां कौन सा डर सामने आ जायेगा
कब कहां कौन क्या सज़ा सुनायेगा
और सज़ा देनेवाले का सुराग़ नहीं मिल पायेगा। ❑

नया ज्ञानोदय से साभार

1. बिल्हण कृत 'चौरपंचशिका' से राजकुमारी विद्या और सुन्दर कवि का संदर्भ,
2. तुलसीदास की चौपाई 'भयदायक खल की प्रिय बानी/जिमि अकाल के कुसम भवानी' का संदर्भ।

राजस्थान के शिक्षा मनीषी श्रद्धेय बाल गोविन्द जी तिवारी



श्री बाल गोविन्द तिवारी

❑

श्रद्धेय बालगोविन्द तिवारी राजस्थान के अग्रणी शिक्षा मनीषी थे। वे मूलत: विचारक थे और शिक्षा को लोक–जागरण का प्रमुख साधन समझते थे। व्यक्ति और समाज का समग्र विकास उनकी चिंता का विषय था। आरोग्य के प्रति भी वे बहुत सजग थे। बीमार शरीर और बीमार दिमागों का डर उनको सदा बना रहता था। वर्तमान शिक्षा के ढ़ांचे में भी वे बहुत बदलाव चाहते थे। इसलिए उन्होंने प्रहर–पाठशाला का एक नया विचार दिया था। शालाओं में शिक्षक आजाद रहे इसकी भी उनको चिंता थी। प्रस्तुत है उनके अपने सुपुत्र की स्मृतियों में उनकी छवियां। ❑ सं.

संस्मरण– १

राजस्थान राज्य शिक्षा संस्थान, उदयपुर की स्थापना

बाबूजी (यानी मेरे पिता बाल गोविन्द जी तिवारी) राजस्थान राज्य शिक्षा संस्थान, उदयपुर के संस्थापक निदेशक थे। उन्होंने १३ नवम्बर, १९६३ को राजस्थान राज्य शिक्षा संस्थान, उदयपुर के निदेशक के रूप में कार्यारम्भ किया, उनके सामने सबसे बड़ा प्रश्न इस नये शिक्षा संस्थान की कार्य–प्रणाली सम्बन्धी था। इस विषय में विभिन्न अवसरों पर संस्थान की स्थापना, उद्देश्य आदि के बारे में मेरी जिज्ञासा पूर्ति के लिए चर्चा करते हुए उन्होंने जो कुछ बताया, उसका सार इस प्रकार है– बाबूजी ने संस्थान की स्थापना के अवसर पर कुछ बुनियादी प्रश्नों से विचार आरम्भ किया। जैसे सबसे पहला प्रश्न था, ''शिक्षा क्यों?'' इसके जवाब में छुपा था अगला प्रश्न, ''शिक्षा कैसे?'' इस प्रकार चिंतन की प्रक्रिया आगे बढती गयी, सस्थान के कार्यों और कार्यक्रमों के मार्ग स्वत: खुलते गये।

भारत में वैदिक काल से शिक्षा को आत्मोद्धार का मार्ग माना गया है। यह ऐसा मार्ग है जिस पर चलने वाला पथिक केवल मनुष्य ही नहीं, समस्त प्राणियों के हित की बात सोचता है। गीता में अध्याय–६ के श्लोक ५ में कहा गया है–

''उद्धरेदात्मनात्मानं
नात्मानमवसादयेत्''

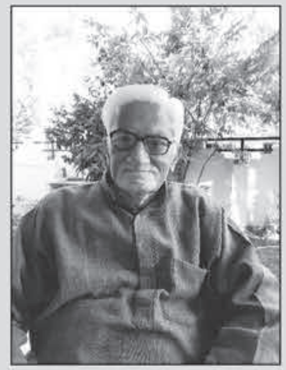
अर्थात् ''मनुष्य को चाहिये कि अपने द्वारा अपना संसार रूपी समुद्र से उद्धार करे और अपनी आत्मा को अधोगति में न पहुँचावे।''जिसने इस मार्ग को अपना लिया, वह शोधवृत्ति का हो जाएगा, उसके काम की निगरानी के लिए किसी चौकीदार की जरूरत नहीं रहेगी। इस शिक्षा संस्थान को ऐसे कार्यकर्त्ताओं की आवश्यकता होगी जो स्वयं राज्य की शैक्षिक आवश्यकताओं को पहचान कर अपने लिए कार्य सृजित करें। यदि संस्थान का प्रत्येक कार्यकर्त्ता स्वप्रेरित होकर चिंतन करेगा, तो शिक्षा की समस्याओं का समाधान आसान होगा।

उन्होंने संस्थान के मोनोग्राम में ध्येय वाक्य **''उद्धरेदात्मनात्मानं''** रखा और इसको आधार बनाते हुए संस्थान की कार्यविधि और कार्यक्षेत्रों की रूपरेखा तैयार की।

''उद्धरेदात्मनात्मानं'' शिक्षा में अनुसंधान का आधार प्रस्तुत करता है। क्या, क्यों, कैसे, कहाँ, किसके द्वारा, कब, कितना आदि-आदि व्यवस्था सम्बन्धी प्रश्न सामने आते हैं, जिनका सही समाधान करने के लिए शोध अपेक्षित है। शोध का लाभ लाभार्थी तक पहुंचे, इसके लिए प्रशिक्षण, प्रसार और प्रकाशन अपेक्षित है। इस प्रकार संस्थान की कार्य प्रणाली के ये चार आधार स्तम्भ निर्धारित किये गये।

संस्थान की स्थापना के समय बाबूजी की आयु ५५ वर्ष थी और सेवानिवृत्ति की आयु ५८ वर्ष, अर्थात् मात्र तीन वर्ष संस्थान को पटरी पर लाने के लिए उपलब्ध थे। अत: उन्होंने प्रथम छ: मास में अधिक ध्यान संस्थान के संस्थापन प्रबन्ध पर दिया, आगामी दो वर्ष प्राथमिक शिक्षा पर और अन्तिम छ: मास उच्च प्राथमिक शिक्षा के आधारभूत चिंतन पर लगाये। माध्यमिक शिक्षा पर अधिक ध्यान देने का अवसर कम ही मिला, मात्र कुछ अवसरों पर पहल अवश्य की। इसी क्रम में दिनांक १२.१२.१९६४ को राजस्थान माध्यमिक शिक्षा बोर्ड के तत्कालीन अध्यक्ष श्री लक्ष्मीलाल जी जोशी को एतद्-विषयक पत्र भी लिखा था।

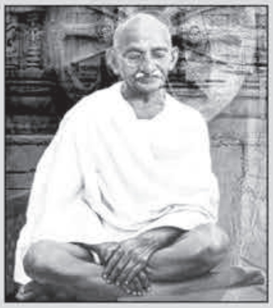
उनका मानना था कि सारे मोर्चे एक साथ खोलने से एक कार्य भी व्यवस्थित नहीं होता है। किन्तु सेवानिवृत्ति के बाद जब भी संस्थान के लोगों से मिलते, तो उनसे कहते कि संस्थान का कार्य क्षेत्र एन.सी.ई.आर.टी. की तरह माध्यमिक शिक्षा स्तर तक का है, इसके लिए संस्थान की स्थापना के मूल दस्तावेजों का अध्ययन करें, किन्तु संस्थान के कार्मिक यह कह कर आत्म-संतुष्टि का अनुभव करते रहे कि ''संस्थान का कार्यक्षेत्र उच्च प्राथमिक स्तर तक सीमित है, माध्यमिक शिक्षा का कार्य राजस्थान माध्यमिक शिक्षा बोर्ड का है।'' इसके लिए तर्क दिये जाते थे कि माध्यमिक शिक्षा बोर्ड के एक्ट में ऐसे प्रावधान हैं, जिनका अतिक्रमण नहीं हो सकता। किन्तु मेरे इस तर्क का कोई संतोषजनक उत्तर नहीं मिलता कि राजस्थान विश्वविद्यालय और बोर्ड की स्थापना से पहले राजस्थान की माध्यमिक और विश्वविद्यालय स्तर की शिक्षा की परीक्षाएं आगरा विश्वविद्यालय द्वारा आयोजित होती थीं, किन्तु आगे चलकर सम्बन्धित एक्ट में संशोधन हुए, राज्य स्तर पर नये एक्ट बनकर लागू हुए। पहले केवल राजस्थान में विश्वविद्यालय जयपुर में स्थापित हुआ, माध्यमिक शिक्षा की परीक्षा भी वही लेता था, बाद में माध्यमिक शिक्षा बोर्ड बना। अब पूरे राज्य में कई सरकारी और स्वयं सेवी विश्वविद्यालय हैं, जब उनके लिए एक्ट में संशोधन हो सकता है तो माध्यमिक शिक्षा बोर्ड के एक्ट में क्यों नहीं हो सकता है?



ऋषिराज तिवारी

❑

राजस्थान शिक्षा विभाग में शिक्षक के रूप में २८ नवम्बर, १९७३ से सेवा आरम्भ कर ३१ दिसम्बर, २००० को ५५ वर्ष की आयु में स्वास्थ्य सम्बन्धी कारण से स्वैच्छिक सेवानिवृत्त हुए। इतिहास, भूगोल और गणित में स्नातक करने के बाद भूगोल में अधिस्नातक की उपाधि प्राप्त की, तदुपरान्त बी.एड. और एम.एड. की उपाधि भी प्राप्त की। सेवाकाल के आरम्भ में माध्यमिक कक्षाओं में गणित का शिक्षण किया, फिर व्याख्याता फिर प्रधानाध्यापक और फिर अनुसंधान अधिकारी (राज्य शैक्षिक अनुसंधान एवं प्रशिक्षण संस्थान, उदयपुर) आदि विभिन्न समकक्ष पदों पर शिक्षण, शिक्षक प्रशिक्षक के दायित्व का निर्वाह किया। ❑ सं.



बापू ने कहा था

१. आज की शिक्षा बहुत खर्चीली बन गई है। इससे पता चलता है कि शिक्षा की दिशा गलत है।

२. शिक्षा की सारी व्यवस्था इस प्रकार होनी चाहिये कि जिससे शिक्षक और विद्यार्थी अपने अन्न-वस्त्र का खर्च तो अपनी मजदूरी से ही प्राप्त कर सकें। केवल मकानों, साधनों आदि के लिए ही जनता से खर्च मांगने की आवश्यकता रहनी चाहिये।

३. आज ऐसा हो नहीं सकता, क्योंकि शिक्षक और विद्यार्थी दोनों मेहनत करने के लिए पूरी तरह तैयार और अभ्यस्त नहीं हैं। किन्तु इसमें संदेह नहीं कि प्रयत्न इसी दिशा में होना चाहिये।

४. बालक जितनी शिक्षा अपने घर में ही प्राप्त कर लेगा, पाठशाला के समय, शक्ति और साधनों की उतनी ही बचत होगी। मतलब यह कि माता-पिता को संस्कारी बनाने से शिक्षा का खर्च घटेगा।

५. प्राथमिक कही जाने वाली शिक्षा इस प्रकार अधिकतर घरों में ही प्राप्त हो जानी चाहिये। ❑

संस्मरण-२

''प्रचार व्यक्ति का नहीं, विचार का होना चाहिए।''

बाबूजी व्यक्ति से अधिक विचार को महत्व देते थे। ऐसे अवसर याद आते हैं जब वह कहा करते थे कि ''प्रचार व्यक्ति का नहीं, विचार का होना चाहिए।'' इस विषय में एक घटना याद आती है। राजस्थान राज्य शिक्षा संस्थान, उदयपुर में अपने कार्यकाल के दौरान बाबूजी संस्थान में आने वाले सभी संम्भागियों को संस्थान में संचालित हो रहे नवाचारों की जानकारी चक्रांकित (साइक्लोस्टाइल) कर पठन सामग्री के रूप में उपलब्ध कराते थे। इस क्रम में प्राथमिक शिक्षा में ''प्रहर पाठशाला'' सम्बन्धी नवाचार की पठन सामग्री भी अतिरिक्त मात्रा में चक्रांकित करा कर रखी गयी थी। इस प्रयोग के अनेक वर्षों बाद कहीं से संस्थान में एक पत्र आया, जिसमें प्रहर पाठशाला सम्बन्धी जानकारी मांगी गयी थी। चूंकि तब तक प्रयोग मृतप्राय हो चुका था, संस्थान के तत्कालीन निदेशक जी ने सम्बन्धित प्रकोष्ठ प्रभारी को इस बाबत टिप्पणी तैयार करने के निर्देश दिये। उस अधिकारी ने अपने हाथों से लिखकर एक टिप्पणी निदेशक जी के समक्ष प्रस्तुत की। निदेशक जी उस टिप्पणी की भाषा से बहुत प्रभावित हुए और प्रशंसा भाव से टिप्पणी संस्थान के ही एक अन्य अधिकारी को पढ़ाई, तो यह अधिकारी चौंक गये। उन्होंने निदेशक जी से अपने कक्ष तक जाकर आने की अनुमती ली और दौड़ कर एक चक्रांकित दस्तावेज लाकर उनके सामने रख दिया और कहा कि इस दस्तावेज के मूल लेखक बाल गोविन्द जी तिवारी हैं, जिसकी अक्षरश: नकल कर यहां आपको प्रस्तुत किया गया है।

निदेशक जी को असल माजरा समझ में आ गया। इन्हीं दूसरे अधिकारी जी ने इस घटना को मेरी उपस्थिति में बाबूजी को बताते हुए

शिकायत की, कि किस प्रकार आपके विचारों को मूल स्रोत बताए बिना अपनी ओर से प्रस्तुत किया। इस पर पहले तो बाबूजी खिलखिला कर हँसे, फिर प्रसन्नता व्यक्त करते हुए कहा कि ''मुझे इस बात की खुशी है कि मेरा विचार किसी को पसन्द आया और उसने उस विचार को आगे बढ़ाया। इससे क्या फर्क पड़ता है कि अच्छा विचार मेरे नाम से आगे बढ़े या किसी और के नाम से। इस प्रकार मेरा विचार न केवल ज़िन्दा रहेगा अपितु लम्बे समय तक अधिक लोगों की प्रसन्नता का कारण बनेगा।'' शिकायतकर्ता जब पुन: अपने तर्क देने लगे, तो बाबूजी बोले कि ''अरे भई, इसको यों समझो कि खुशबू और बदबू छिपाए नहीं छिपती है। थोड़े समय के लिए तो उसे दबाया जा सकता है, पर फिर लोग असलियत जान ही जाते हैं। तो क्यों परेशान होते हो? खुशबू, जैसे भी हो, फैलने दो।'' एक तरफ लोग अपने चिंतन को ''कॉपी-राइट'' के अन्तर्गत सुरक्षित कराने की बात करते

हैं, वहीं वह कहते थे कि ज्ञान और सद्विचार बाँटने से बढ़ते हैं, व्यक्ति की प्रशस्ति के बजाय सद्-विचारों का लोकहित में प्रचार अच्छा कार्य है।

संस्मरण–३

किसी को धोखा देने से अच्छा है धोखा खाना

बाबूजी कहते थे, ''किसी को धोखा देने से अच्छा है धोखा खाना। हम भगवान से यही प्रार्थना करते हैं कि भले ही हम १०० बार धोखा खाएं, पर एक बार भी किसी को धोखा नहीं दे, ताकि अन्तिम समय हमारी आत्मा निर्लिप्त रहे और शान्ति से प्रस्थान कर सके।''

संस्मरण–४

असली दौलत वो, जिसे कोई चुरा न सके

बात १६७३ की है। शिक्षा विभाग में मेरी प्रथम नियुक्ति राजकीय माध्यमिक विद्यालय, कुंवारिया, जिला उदयपुर (वर्तमान जिला राजसमन्द) में द्वितीय वेतन शृंखला में प्रशिक्षित गणित अध्यापक के रूप में हुई। उदयपुर से कांकरोली होते हुए भीलवाड़ा के मार्ग में लगभग ८० किलोमीटर दूर कुंवारिया स्थित है। इस मार्ग पर उदयपुर के चेतक चौराहे के पास से प्राइवेट बसें चला करती थीं।

मुझे २८ नवम्बर, १६७३ को विद्यालय में उपस्थित होना था। इसके लिए २७ नवम्बर को उदयपुर से प्रस्थान करना तय हुआ। बाबूजी उस समय लोकमान्य तिलक शिक्षक प्रशिक्षण महाविद्यालय, डबोक (उदयपुर) में प्राचार्य के पद पर कार्यरत थे। वह अपनी कार से मुझे लेकर डबोक से बस स्टैण्ड आये।

जैसे ही बस चलने को तैयार हुई, मैं उनके चरण स्पर्श कर बस में चढ़ने को आगे बढ़ा, अचानक बाबूजी ने मुझे पुकारा, ''सुनो, आज हमारी एक बात सुनते जाओ। अभी तक शिक्षा विभाग में तुम्हारी पहचान हमारे पुत्र के रूप में है, लोग तुम्हें हमारे पुत्र के रूप में पहचानते हैं। अब शिक्षा विभाग में तुम्हारी अपनी स्वतन्त्र पहचान ''ऋषिराज तिवारी'' के रूप में बनेगी, तुम्हें लोग तुम्हारे अपने नाम से पहचानेंगे। थोड़े दिनों बाद लोग हमें भूल जायेंगे, हमारी अपनी पहचान नहीं रहेगी, किन्तु लोग हमें तुम्हारे पिता के रूप में पहचानेंगे। देश की आजादी के पहले तीन रियासतों के राजकुमारों (भावी राजाओं) के सिर पर हमारा आशीर्वाद का हाथ रहा, कभी माँगने (हथेली ऊपर की ओर करते हुए कहा) की मुद्रा में नहीं रहा और आजादी के बाद भी हमारा हाथ इसी प्रकार आशीर्वाद की मुद्रा में रहा। हम चाहेंगे कि हमारी
इस पोजीशन का तुम्हें ध्यान रहे।'' इसके बाद कुछ क्षण रुक कर फिर बोले, ''हम जब इस दुनिया से जायेंगे तो तुम लोगों (परिवार) के लिए ऐसी कोई दौलत छोड़ कर नहीं जायेंगे,

संवाद



बजरंग शर्मा

❑

मिशन ताना–बाना

श्रीमान,

यह एक उत्कृष्ट अवधारणा है। इसमें छोटे पैमाने पर अपने निहित उद्देश्यों को प्राप्त करने की सम्भावनाएँ समाहित हैं। वर्तमान में सामाजिक परिवेश बदल गया है। गांधी कतिपय समुदायों में स्वीकार्य नहीं है। ऐसा ही महावीर व बुद्ध के साथ है। कार्ल मार्क्स अपने जन्म के स्थान पर भी भुला दिए गये हैं। किसी भी संघर्ष के पीछे स्पष्ट, दीर्घकालीन एवं वैकल्पिक नीति नहीं महसूस होती। जीवन के संचालन में अर्थ सर्वोपरि हो रहा है तथा बाज़ार सभी सामाजिक, पारिवारिक व सामुदायिक

निर्णयों में अपना स्थान बना चुका है। ग्रामीण परिवेश में भी बहुत बदलाव आया है। वैश्विक परिदृश्य भी सहयोगी नहीं है। प्रजातंत्र अपने निर्दयी चेहरे के साथ खड़ा है।राष्ट्रीय स्तर के राजनैतिक दल वोटों को बटोरने के मुद्दों के साथ बेताब खड़े हैं तथा कोई गांधी, सुभाष, जय प्रकाश जैसा आँखों की दृष्टि में दिखायी नहीं दे रहा है। सामाजिक परिवर्तनों में कतिपय नायकों की भूमिका ज़रूरी है।

ऐसे में इस अवधारणा को सामाजिक ज़रूरत बनना पड़ेगा तथा इस पर ज़्यादा काम करने की आवश्यकता है। वर्तमान में सामाजिक बदलाव की व्यूह रचना के लिये बहुत से विकल्पों पर विचार करना होगा। आपका सोच व चिंतन अनुकरणीय है। मैं इसका सम्मान करता हूँ तथा इसे मैं मेरे निजी जीवन में पूर्ण सत्य निष्ठा से अपनाऊँगा। ❑

सेवा निवृत्त आई.ए.एस.,
७-८ टाइगर हिल, बड़ी रोड,
उदयपुर-३१३००१

जिसे कोई चोर चुरा सके, पर ऐसी दौलत अवश्य छोड़ेंगे, जिसे तुम लोग अगर सही ढंग से इस्तेमाल करोगे तो उसके Incidental benefits अवश्य मिलेंगे।'' उनका संकेत उनके उस मान-सम्मान सम्बन्धी था, जो उन्हें शिक्षा विभाग में मिला और उनके पुत्र होने के नाते लोग हमारा भी विशेष ध्यान रखेंगे, लेकिन इसके लिए हमें भी यह सावधानी रखनी होगी कि हमारे किसी कार्य से बाबूजी के नाम पर कोई धब्बा नहीं लगे।

एक बात और, बाबूजी ने कभी हम पर आदेशात्मक रूप में कोई बात नहीं थोपी। उनका तरीका सदा सुझावात्मक रहा। किसी भी समस्या पर उनसे बात करने पर वह कहते, हम जिस रास्ते से चलकर यहाँ तक पहुँचे, वह हम बता सकते हैं। साथ ही हमारी दृष्टि से कौन सा रास्ता तुम्हारे लिए ठीक हो सकता है, यह सुझाव भी दे सकते हैं। किन्तु तुम स्वयं अपना रास्ता तलाशो, स्वयं निर्णय करो। फिर एक बार निर्णय लेने के बाद भले ही आगे चलकर उसमें कोई कमी अनुभव हो, उस पर कभी अफसोस मत करो, क्योंकि निर्णय तुम्हारा अपना था।''

बाबूजी के बताए मार्ग मेरे लिए ब्रह्मवाक्य जैसे रहे। शिक्षा विभाग में ३० वर्ष की सेवा का मुझे लाभ मिला, मेरा हर पल यह प्रयास रहा कि मेरे किसी दायित्व निर्वाह में कभी कोई कमी न रहे, कोई यह न कहे कि तिवारी जी के पुत्र ने कोई गलत कार्य किया या लापरवाही बरती।

सेवानिवृत्त हुए मुझे २० वर्ष हो गये। इस बात का मुझे आत्म-संतोष है कि मुझे भी मेरे साथियों से भरपूर प्यार और सम्मान मिला। यह उनके आशीर्वाद का परिणाम था। बाबूजी को जानने वाले पुराने लोग जब मिलते हैं और उनको ज्ञात होता है कि मैं उनका पुत्र हूँ, तो उनकी जो प्रतिक्रिया मुझे मिलती है, उसे व्यक्त करने की शब्द-सामर्थ्य मेरे पास नहीं है। ❑

२ ए-२६,गुप्तेश्वरनगर,सेक्टर-७,
हिरणमगरी, उदयपुर-३१३००२
(राजस्थान)
दूरभाष: ०२९४-२४८९६७४,
९४६०७००१४७

खोल किंवाड़ा हूणिया

आखर रौ सत ऊजलौ, आखर रूप अकूत ।
आखर में चेतन बसै, हिरदे धारो हूणिया।।

❑❑❑

पंडित काजी कातग्या, पूजा और नमाज।
जात पांत रे सूत में, सांच उळझग्यो हूणिया।।

तमीज़ का ह्रास

इ से कोई भी आसानी से देख सकता है कि पिछले समय में हमारे देश में शिष्टता या तमीज़ का ज़बरदस्त ह्रास हुआ है। पर इसमें आश्चर्य की कोई बात नहीं है क्योंकि यही वह समय भी रहा है जिसमें एक भौतिकतावादी और उपभोक्तावादी सभ्यता की पकड़ हमारे समाज पर ज़्यादा मज़बूत हुई है। यही वह समय रहा है जिसमें लोगों की आत्मकेन्द्रितता में ज़बरदस्त वृद्धि भी हुई है।

हम देख सकते हैं कि किसी भी प्रकार की शिष्टता के मूल में दूसरों की भावनाओं का ख़याल काम करता है। किसी तमीज़दार युवक के लिए यह संभव नहीं कि वह किसी वरिष्ठ नागरिक के लिए आरक्षित सीट पर कब्ज़ा करके बैठा रहे जबकि उसके पास ही एक वृद्ध खड़ा हो। एक शिष्ट बेटा अपने माता-पिता से कभी यह नहीं कह पाएगा कि उन्होंने उसका लालन-पालन करके उस पर कोई एहसान नहीं किया है। तमीज़दार आदमी अपने अधिकारों की बात करने से पहले अपने कर्तव्यों के बारे में भी सोचेगा। किसी सामूहिक भोज में वह दूसरों को धकेल कर आगे जाने की कोशिश करने के बजाय लाइन में खड़ा होकर अपना नंबर आने का इंतज़ार करेगा। वह इसलिए वक़्त का पाबंद रहेगा कि उसकी वजह से दूसरों को देर न हो जाए या किसी को उसके लिए इंतज़ार न करना पड़े। कठिन समय में भी वह ऐसी भाषा का इस्तेमाल न करेगा जिससे दूसरों के दिल को चोट पहुंचे।

हमें यह नहीं भूलना चाहिए कि एक शिष्ट समाज एक सुंदर समाज भी होता है चाहे यह सुंदरता सबको आसानी से दिखाई न दे। वह एक प्रकार का आत्म-नियंत्रित समाज होता है जिसकी बाहर से बहुत ज़्यादा चौकसी की ज़रूरत नहीं होती। वह एक नैतिक और अनुशासित समाज भी होता है जिसमें अनुभव और सद्गुणों की कद्र होती है। तमीज़ मनुष्य की अनेक पाशविक वृत्तियों को भी नियंत्रित करती चलती है। तमीज़दार आदमी न केवल बातचीत में बल्कि रहन-सहन और आपसी व्यवहार में भी किसी निर्धारित परिपाटी का अनुसरण करता है जिससे किसी समाज में व्यवस्था और समरसता कायम रहती है। जब लोग शिष्टता का ख़याल छोड़ मनमानी करने लग जाते हैं तो उस समाज के हिंसा और अराजकता की ओर धकेल दिए जाने



सदाशिव श्रोत्रिय

❑

आज समाज में शिष्टता का स्थान अशिष्टता ले रही है। मूल्यों का विघटन लगातार बढ़ता जा रहा है। समरसता की जगह भौतिकता बढ़ रही है। यहां तक कि आज बालकों में बड़ों के प्रति मान-सम्मान भी कम हो रहा है। अपने से बड़ों का सम्मान और अपने कल्याण का भाव वे भूलते जा रहे हैं। इसके चलते शिष्ट, सुन्दर समाज की रचना मुश्किल में पड़ गयी है। वे स्वयं ही आत्महंता होते जा रहे हैं। प्रस्तुत आलेख में शिक्षाविद् सदाशिव श्रोत्रिय यही सब चिन्ता जता रहे हैं। ❑ सं.

का खतरा पैदा हो जाता है। तमीज़ व्यक्ति में निस्वार्थता और परोपकार के भाव की वृद्धि कर उसे समाज के लिए भी अधिक उपयोगी बनाती है। हम देखते हैं कि आजकल सामान्यत: लोग किसी बदतमीज़ी करने वाले को टोकते नहीं, जबकि पहले उसे हर कोई टोक दिया करता था। इसका अर्थ यह हुआ कि पहले जहां तमीज़ को एक सामाजिक संरक्षण प्राप्त था, वहां अब उसका पक्ष लेने वालों की या उसकी परवाह करने वालों की संख्या भी कम हो गई है। स्थितियां इस क़दर बिगड़ती जा रही हैं कि मां-बाप तक अपने बच्चों को किसी सही बात के लिए टोकने में हिचकिचाहट महसूस करते हैं। अमरीकन समाज की देखादेखी आजकल हमारे देश के भी कई लोग गाली-गलौज की भाषा को साहसिकता और आधुनिकता का पर्याय मानने लगे हैं।

भाषा का तमीज़ से सीधा संबंध है। कोई व्यक्ति कितना तमीज़दार है, इसका अनुमान समझदार लोग उसकी भाषा से लगा लेते हैं। हमारे यहां कहा भी है :

काक: कृष्ण: पिक: कृष्ण: को भेद: पिककाकयो:। वसंतकाले सम्प्राप्ते काक: काक: पिक: पिक:।।

पर अब जिस तरह भाषा का अनुशासन हर क्षेत्र में घटता जा रहा है, वह भी हमारे समाज में तमीज़ के ह्रास को प्रमाणित करता है। पहले किसी के 'सब्ज़ी' को 'सब्जी' या 'जलता' को 'ज़लता' कहने पर सुनने वालों की त्यौरियां चढ़ जाती थीं, पर अब किसी भाषा के साहित्य में स्नातकोत्तर उपाधि प्राप्त व्यक्ति के लेखन में भी उस भाषा संबंधी अशुद्धियाँ ढूंढी जा सकती हैं। मैं जिस कॉलेज में पढ़ाता था, वहां हर छात्र-छात्रा को मैं राजनीति-शास्त्र (पोलिटिकल साइंस) विषय के लिए केवल 'पोलिटिकल' शब्द का इस्तेमाल करते पाता था और उन्हें शायद इसके लिए कभी टोका भी नहीं गया था। 'क्षमा करें' या 'मुझे अफ़सोस है' जैसी अभिव्यक्तियां तमीज़दार लोगों की बोलचाल में ही दिखाई देती हैं। बदतमीज़ आदमी तो किसी से टकरा जाने पर भी दूसरे को अंधा कहने और झगड़ा करने को तैयार रहता है। इससे यह निष्कर्ष भी निकाला जा सकता है कि शिष्टता किसी समाज के व्यवहार को नियंत्रित रखने और उसे उग्रता व हिंसा से बचाए रखने में भी मदद करती है। जो व्यक्ति भाषा के प्रयोग में सावधानी बरतता है, उससे इंसानी मामलों में भी एक बेहतर इंसान साबित होने की उम्मीद की जा सकती है। सामान्यत: ऐसा नहीं होता कि बोली में बहुत तमीज़दार कोई इंसान उसके व्यवहार में एक बहुत ही घटिया इंसान साबित हो।

पिछले कुछ समय में हमारे यहां शिष्टता के ह्रास के पीछे एक प्रधान कारण एक आध्यात्मिक और



बालक की इच्छा को काम में लगाइये –

❑

तो क्या आप उसे कमरे की ईंट उखाड़ने देते ?

'बिल्कुल नहीं। बच्चों के दिल में विशेष इच्छा बहुत कम पैदा होती है। ज्यादातर ज्ञान-इच्छा पैदा होती है। मैं उससे कहीं भी ईंट उखाड़ने के लिए कहता और वह जरूर मेरा कहना मान लेता।'

मेरे मेजबान बोले, 'अजी, हमें और बच्चे की मां को इस तरह सोचने की फुरसत कहां ?'

मैं बोला, 'अभी-अभी आप अपने को ठाली बता रहे थे और अब कहने लगे फुरसत कहां ?'

❑❑❑

परलोकवादी सभ्यता की जगह एक इहलौकिक और भौतिकतावादी सभ्यता का विकास भी रहा है। आज के बच्चों के मन में बुज़ुर्गों के आशीर्वाद की अवधारणा का स्थान वह नहीं रह गया है जो उन्हें उनसे जन्मदिन पर मिलने वाले महंगे उपहार का। आज के शिष्य किसी क्षेत्र में अपनी सिद्धि के लिए पहले के शायरों या संगीतकारों की तरह किसी उस्ताद या सिद्ध गुरु की तलाश में नहीं भटकते। उनकी प्रगति का द्वार आजकल अक्सर वे शिक्षण संस्थान खोलते हैं जिनका संचालन मोटे तौर पर शिक्षा के व्यापारी करते हैं। पर यह नहीं भूला जाना चाहिए कि जिस आत्मीयता व कल्याण-कामना का स्थान शिष्टता की दृष्टि से उन्नत किसी समाज में हो सकता है, वह आत्मीयता व कल्याण-कामना एक व्यावसायिक और भौतिकतावादी समाज में लगभग निर्वासित ही हो जाती है। श्रद्धा, प्रेम या व्यक्तिगत सम्मान के लिए उसमें कोई जगह नहीं रह जाती। यह विचारणीय है कि एक शिष्टताविहीन समाज को हम एक समृद्धतर समाज की संज्ञा दें या एक दरिद्र होते जाते समाज की।

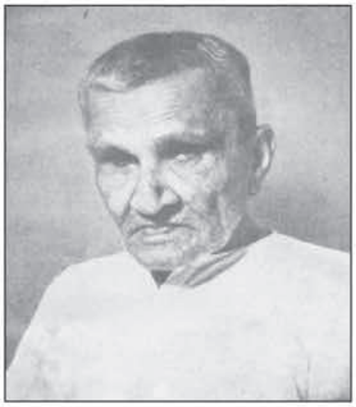
शिष्टता शांति, व्यवस्था, अनुशासन और सुंदरता जैसे कई गुणों को पुष्ट करती है। इसका अभाव कई बार जिस तरह संसद और विधान सभाओं जैसे गौरवशाली स्थानों की गरिमा और सुन्दरता को नष्ट करता है, वह राष्ट्रीय स्तर पर किसी देश की लज्जा का विषय हो सकता है। तमीज़ की मांग वे ही लोग कर सकते हैं जिनका सौन्दर्यबोध परिष्कृत हो। जहां तमीज़ का अभाव है, वहां अच्छे साहित्य या कलाओं के विकास की उम्मीद भी नहीं की जा सकती। तमीज़ का कृतज्ञता-भाव से भी अंतरंग रिश्ता है। तमीज़दार आदमी किसी का कोई एहसान तब तक नहीं लेना चाहता जब तक वह स्वयं इस एहसान को चुकाने में समर्थ न हो। किसी के एहसान को तमीज़दार आदमी अपने ऊपर चढ़े हुए भार के रूप में लेता है। कहा भी है कि **तृणमात्र परोपकार शैलवन्मन्यते साधुः।** पर जिनमें तमीज़ का अभाव है, उन्हें एहसानफ़रामोशी में भी कोई लज्जा नहीं आती। राजनीति में सत्ता और संपत्ति के लोभ में जिस तरह लोग दल बदल लेते हैं, वह हमारे समय की इस बदतमीज़ी का एक जाना-पहचाना उदाहरण है। जो तमीज़दार नहीं हैं, उन्हें अपनी संस्थाओं या कुटुम्बियों से भी कोई दिली लगाव नहीं होता।

पैसे के अत्यधिक महत्व ने भी शिष्टता के ह्रास में अहम भूमिका अदा की है। आज पैसे का लालच ही अक्सर व्यक्ति को वक़्त का पाबंद या तमीज़दार बना पाता है। लज्जा, सद्व्यवहार, आत्मसम्मान या कर्तव्यनिष्ठता जैसी अवधारणाएं पैसे के लोभ से क्षरित हो जाती हैं। यह कहना शायद अनुचित न होगा कि आज के पोर्न-वीडियो लोभ और बदतमीज़ी के उस चरम रूप का उदाहरण पेश करते हैं जिनमें अभिनय करने वालों को चलचित्रकारों की उपस्थिति भी खुले यौनाचार से विमुख नहीं कर पाती । ❑

५/१२६ गोवर्द्धन विलास हाउसिंग
बोर्ड कॉलोनी,
हिरन मगरी सेक्टर १४,
उदयपुर -३१३००१
मोबाइल -८२९०४७९०६३

बालक को डराइए मत

कुण हिंदु कुण मुसलमीन, कुण ईसाई सिक्ख।
जाम्यां एक ज़मीन, जात भारती हूणिया।।



पण्डित सुखलाल जी संघवी

आज लोग भूल जायेंगे इसलिए हम पण्डित सुखालाल जी संघवी का जिक्र कर रहे हैं। नयी से नयी सामान्य ज्ञान की किताबों में कभी कोई भूल से भी नाम नहीं लेगा कि भारत में सुखलाल जी सिंघी जैसा कोई उद्‌भट विद्वान हुआ। हमारी सारी आने वाली पीढ़ियां और आज के परिवार भी पण्डित सुखलाल जी के बारे में नहीं जान सकेंगे।

हमने दरअसल अपने ऋषियों, मुनियों, तपस्वियों, विभूतियों आदि के बारे में कुछ जानना जरूरी ही नहीं समझा है अब तक। खैर ! विलाप में रखा ही क्या है?

पण्डित सुखलाल जी गुजरात में सुरेन्द्र नगर जिले में लिमड़ी गांव में ८ दिसम्बर १८८० को जन्मे थे। बनियों का घर था। पिता तुलसी सिंघी थे। मां मणिबेन थी। सुखलाल जी की छोटी उम्र में ही जब वे केवल ४ साल के थे तब मां स्वर्ग सिधार गयी थी। लिमड़ी में किसी धाय मां ने उनको पाला-पोसा बड़ा किया था।

यह तो साधारण जानकारी है। छोटी उम्र में ही उन्होंने जैन मुनियों के प्रवचन सुनने आरंभ कर दिये थे और किसी अन्य पढ़े लिखे पाठक की मदद से उन्होंने मूल ग्रंथ भी पढ़ने प्रारंभ कर दिये थे। कारण यह था कि जब वे १६ वर्ष के थे तब चेचक के भारी प्रकोप से उनकी दोनों आंखें चली गयी थी। विद्या की आशा, अभिलाषा और मनीषा मन में गहराई हुई थी। पंडितजी हर हालत में अपनी ज्ञान पिपासा को शांत करने के लिए हर संभव प्रयत्न करना चाहते थे। परिणाम यह हुआ कि गुजरात में जन्में पंडित जी वाराणसी जा पहुंचे और वहां पर जैन निगमों, आगमों का अध्ययन करते हुए भारतीय तत्वविद्या के एक-निष्ठ अन्वेषक हो गये। उसमें गोता लगाते रहे और गहरे डूब-डूब कर नित नये सूत्र खोजते रहे। १९२२ में उन्होंने गुजरात विद्यापीठ के पुरातत्व मंदिर में

पण्डित सुखलाल जी कृत ग्रंथ

❑

⁕ **आत्मानुशास्तिकुलक** – मूल प्राकृत, गुजराती अनुवाद।

⁕ **कर्मग्रंथ १ से ४** – देवेन्द्रसूरि कृत, मूल प्राकृत, हिन्दी अनुवाद, विवेचन, प्रस्तावना, परिशिष्टयुक्त।

⁕ **दंडक** – पूर्वाचार्यकृत प्राकृत जैन प्रकरण ग्रंथ का हिन्दी सार।

⁕ **पंच प्रतिक्रमण**– जैन आचार-विषयक ग्रंथ, मूल प्राकृत, हिन्दी अनुवाद, विवेचन, प्रस्तावना युक्त।

⁕ **जैन दृष्टिए ब्रह्मचर्यविचार**– गुजराती में, पंडित बेचरदासजी के सहयोग से।

⁕ **तत्त्वार्थसूत्र**– उमास्वाति वाचककृत संस्कृत, सार, विवेचन, विस्तृत प्रस्तावना युक्त, गुजराती और हिन्दी में।

⁕ **न्यायावतार**– सिद्धसेन दिवाकरकृत, मूल संस्कृत, अनुवाद, विवेचन, प्रस्तावनायुक्त।

⁕ **प्रमाणमीमांसा**– हेमचंद्राचार्यकृत, मूल संस्कृत, अनुवाद, विवेचन, प्रस्तावनायुक्त।

⁕ **योगदर्शन**– मूल पातंजल योगसूत्र, वृत्ति उपाध्याय यशोविजयजीकृत, तथा श्री हरिभद्रसूरि कृत, प्राकृत योगविंशिका मूल, टीका (संस्कृत) उपाध्याय यशोविजयजी कृत, हिन्दी सार, विवेचन तथा प्रस्तावनायुक्त। ❑

भारतीय दर्शन के प्राचार्य का पद संभाला। कई पुस्तकें लिखी। कई पुस्तकों का संपादन किया। जैन-दर्शन भी पढ़ा और बौद्ध-दर्शन भी। पंडित जी चारवाक्-दर्शन के अध्येयता भी रहे और विदांत् एवं मिमांषा के मर्मज्ञ भी। उन्होंने लेख भी लिखे और भाष्य भी लिखे। हिन्दी में भी और गुजराती में भी उनकी कई पुस्तकें प्रकाशित हुई और उनका पूरा जीवन दर्शन और चिंतन को ही निवेदित रहा। उनकी गुजराती में छपी पुस्तक '**दर्शन अनै चिंतन**' को १९५८ में साहित्य अकादमी पुरस्कार मिला। गुजरात विश्वविद्यालय ने उनको १९५७ में डी-लिट की मानद् उपाधि से विभूषित किया। सरदार पटेल विश्वविद्यालय ने उनको १९६७ में उनको डी-लिट की मानद् उपाधि दी और सौराष्ट्र विश्वविद्यालय ने १९७३ में उनको डी-लिट से सम्मानित किया। उनके प्रशंसकों ने डॉक्टर राधा कृष्णन की अध्यक्षता में एक समिति बनाकर उनका नागरिक सम्मान किया और अनेक शिष्यों ने उनसे प्रेरित हो कर, प्रोत्साहित हो कर जाने कितने शिष्यों ने दर्शन में अध्ययन के कीर्तिमान स्थापित किये। भारत सरकार ने उनको आजन्म पेंशन देने की घोषणा की और फिर राष्ट्रपति जी ने उनको १९७४ में पद्म-भूषण से विभूषित किया। डॉ. राधा कृष्णन ने उनके पूरे जीवन को विशुद्ध ज्ञान यज्ञ कह कर सम्मानित किया। सुखलाल जी महात्मा गांधी से मिलने भी गये और उस प्रसंग का उल्लेख नीचे किया जा रहा है। ❑

ओह, मेरे अज्ञान का भी कुछ पार है !



उन दिनों गांधीजी कोचरब साले आश्रम में रहते थे। गर्मी के दिन थे, दोपहर का समय। जैन विद्वान सुखलालजी उनसे मिलने के लिए आये। उस समय दीनबंधु एन्ड्रयूज आदि और कई व्यक्ति थे। पंडित सुखलालजी के साथ भी कई मित्र थे। बातों-ही-बातों में गांधीजी ने पंडितजी से पूछा,'कहां से आ रहे हो ?' पंडितजी ने जवाब दिया, 'पाटण से।'

गांधीजी ने पूछा, 'पाटण तो सिद्धपुर के पहले आता है न?'

पंडितजी ने जवाब दिया, 'नहीं, पाटण मुख्य लाइन पर नहीं है। मेत्राणा से जाने वाली ब्रांच लाइन पर है।'

गहरे अचरज में डूबकर गांधीजी बोले, 'ऐसा ?'

फिर कई क्षण तक वह जैसे मंथन कर रहे हों, मौन ही रहे। फिर बोले, 'ओह, मेरे अज्ञान का भी कुछ पार है !'

उसके बाद उन्होंने उस प्रदेश का नक्शा निकाला और सब रेलवे लाइनें देख डालीं। ❑

मिशन ताना–बाना

लोकाभियान में लोक सहयोग का एक प्रयोग

घर–घर में गुल्लक

इसी पन्ने पर पहले कभी लिखा था– **'चिड़ी चोंच भर ले गयी, नदी न घटियो नीर।...'** कबीरदास की इस पंक्ति का उल्लेख मैंने राजस्थान प्रौढ़ शिक्षण समिति की वार्षिक रिपोर्ट लिखते व भिजवाते समय किया था अन्य किसी सदस्य पर तो इसका प्रभाव पड़ा नहीं था, मगर भाई सदाशिव राम शर्मा ने जरूर विह्वल होकर चुपचाप २५०० रुपये का चैक मुझे दे दिया था। यह भी कहा था कि मैं इसका उल्लेख तक न करूं किसी से। देने वाला भला कभी कहता ही कहां है। वह तो दाताराम होता है।

अब हमने **मिशन ताना–बाना** की शुरुआत बहुत छोटे स्तर पर शुरु कर दी है। इसके लिए भी धन की जरूरत है। सरकारें बहुत सजग नहीं हैं। हम भी दरबारों में याचक बनने से ज्यादा अच्छा समझते हैं कि घर–घर की मदद लें। पुरानी बात फिर याद आती है कि जय प्रकाश नारायण के लिए जब डायलिसिस मशीन खरीदनी थी तो बजाज जी ने कहा था कि वे इसे खरीद देते हैं लेकिन बाबा–विनोबा ने कहा था कि नहीं पूरे भारत में से एक–एक रुपया लेकर एक जयप्रकाश अमृत–कोश बनाया जाये। इसके लिए बाबा–विनोबा ने अपने हाथ से कते सूत की कमाई में से एक रुपया दान दिया था। आज कोई विश्वास नहीं करेगा कि लगभग ७० लाख रुपया इकट्ठा हो गया था। इसका अर्थ यह भी है कि भारत के ७० लाख लोगों को जय प्रकाश जी के स्वास्थ्य की चिंता थी।

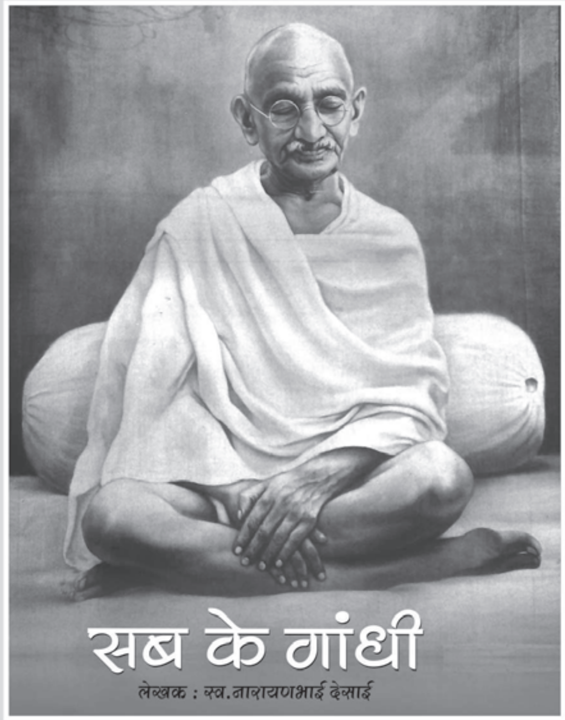
आज हम छोटे से प्रयोग के लिए इतना बड़ा उदाहरण तो नहीं देना चाहते थे मगर प्रसंगवश इसका उल्लेख हो गया है। पाठक क्षमा करें।

हमने पोकरण से गुल्लक बनवाकर मंगाने से पहले हर कार्यकर्ता की टेबिल पर सड़क पर बैठे कुम्हार से खरीद कर एक छोटा–सा गुल्लक हर टेबिल पर रखवा दिया है। अब डेढ़ सौ गुल्लक पोकरण के प्रसिद्ध कुम्हार अचलाराम जी ने बनाकर भेज दिये हैं और उन गुल्लकों पर कुछ बच्चे और स्थानीय शिल्प–शाला के कलाकार रंग भरकर सजा रहे हैं और हम वो गुल्लक घर–घर पहुंचा रहे हैं। विश्वास वही है पुराना कि बूंद–बूंद से घड़ा भरता है और हर घर का अवदान यदि मिल जाये तो शिक्षा यज्ञ में हर घर की आहुति लग जाती है। वैसे भी सारे शिष्य (जो हमारी परम्परा से परिचित हैं वे जानते हैं) समिधा एकत्रित करने के लिए वन–प्रान्तर में ही भटकते थे अथवा लोक की शरण में ही जाते थे। ऋषियों ने कहा भी है कि लोक धर्म से भी बड़ा है। धर्म लोक के लिए ही है।

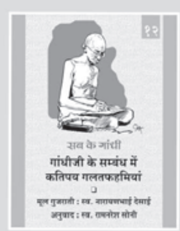


तो हम समिधा बटोर रहे हैं। घर–घर जाकर गुल्लक बांट रहे हैं। लम्बी–लम्बी परियोजनाएं बनाकर बड़े–बड़े दान दाताओं के पास याचक बन कर नहीं जा रहे हैं। जितना भी, जैसा भी हो जायेगा वही हमारे लिए संतोष की बात होगी। लेकिन मिशन ताना–बाना की विशेषता यह है कि हम अकेले इसमें नहीं जुटे हैं। हमारा समानधर्मी कुटुम्ब जहां कहीं भी है वह यदि सामाजिक ताने–बाने को रफू करने में लगा है तो वह हमारा ही काम है। यज्ञ वहां भी चल रहा है। जो कुछ संपन्न हो जाता है वही जजमानी काम माना जाता है। जो संपन्न कराता है वह जजमान हो जाता है। जजमान का अर्थ ही यह है कि जो यज्ञ को मान्य है वह जजमान है। तो हमारा प्रयोग चल रहा है। ❑

रमेश थानवी
मो. ९४६०३८०२३२









सहयोग राशि के लिए बैंक विवरण

BANK OF BARODA
Rajasthan Adult Education Association
Branch Name : IDS Ext. Jhalana Jaipur
I.F.S.C. Code : BARB0EXTNEH
(Fifth Character is zero)
Micr Code : 302012030
Acct.No. : 98150100002077

राजस्थान प्रौढ़ शिक्षण समिति
7–ए, झालाना संस्थान क्षेत्र,
जयपुर–302004

सब के गांधी

राजस्थान प्रौढ़ शिक्षण समिति
7–ए, झालाना संस्थान क्षेत्र
जयपुर–302004

१२ पुस्तकों के एक सैट की सहयोग राशि रुपये ५००/– मात्र

स्वत्त्वाधिकारी राजस्थान प्रौढ़ शिक्षण समिति द्वारा कुमार एंड कम्पनी, जयपुर में मुद्रित तथा
७–ए, झालाना संस्थान क्षेत्र, जयपुर–३०२००४ से प्रकाशित। संपादक – रमेश थानवी

अनौपचारिका : पृष्ठ–२८ फरवरी, २०२१ रजिस्ट्रार ऑव न्यूज पेपर, नई दिल्ली के द्वारा पंजीकृत मासिक पत्रिका RNI 43602/77 ISSN No. 2581-981X

